Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 18, Issue No. 6, October-2021, ISSN 2230-7540

वर्तमानयुग में मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकता एवं मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया

आरती शुक्ला[1]*, डॉ. एस. के. महतो[2]

[1]शोधार्थी, श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

[2] शोध पर्यवेक्षक, श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

शोध सार – *मूल्य व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारिण करने वाली शक्ति के रूप में जानी जाती हैं तथा इनमें समाज की सहमति व असहमति भी निहित रहती है। भारतीय संस्कृति में मानव के द्वारा अनुभूत किसी भी आवश्यकता की तुष्टि का जो भी साधन है वह साधन मूल्य है। मूल्य एक सामान्य एवं अमूर्त गुण है जो किसी व्यक्तित्व में निहित रहता है और उसके व्यक्तित्व की विशिष्टता तथा महत्व की ओर संकेत करती हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्ति या वस्तु का वह गुण जिसके कारण उसका महत्व सामान्य की अपेक्षा अधिक हो जाता है तथा उनका उपयोग प्रचलन में अधिक बढ़ जाता है, वह मूल्य कहलाता है। मूल्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है, यथा सैद्धातन्तिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक/कलात्मक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं समग्र मूल्य। शास्त्रों में मूल्य के विभिन्न पक्षों का भी वर्णन किया गया है यथा, धार्मिक पक्ष, वैज्ञानिक पक्ष, सामाजिक पक्ष, नैतिक पक्ष, व्यक्तित्व के निर्णायक पक्ष। मूल्यपरक शिक्षा की आज जितनी आवश्यक अनुभव की जा रही है उतनी पहले कभी नहीं की गई थी, हमारी प्राचीन परम्परा एवं संस्कृति से परिपोषित एवं वैयक्तिक अस्मिता एवं विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से नियन्त्रित जीवन-मूल्यो की पुनः प्रतिष्ठा में शिक्षण संस्थाओं का अपना विशिष्ट योगदान रहा है।अतः जीवन-मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता अपरिहार्य है। इस दृष्टि से प्रस्तुत आलेख की उपयोगिता, उपादेयता एवं प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है।"*

संकेत कुँजी - मूल्यपरक शिक्षा, आवश्यकता, प्रकृति, एवं उनके विभिन्न प्रकार एवं मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया।

----------X----------

1. भूमिका

मूल्य व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारिण करने वाली शक्ति के रूप में जाने जाते हैं तथा इनमें समाज की सहमति व असहमति भी निहित रहती है। भारतीय संस्कृति में मानव के द्वारा अनुभूत किसी भी आवश्यकता की तुष्टि का जो भी साधन है वह साधन मूल्य है। चूंकि मानव की आवश्यकताएँ व इच्छाएँ अनन्त है, अतः ये मूल्य भी अनन्त होते हैं। अर्थ के अन्तर्गत मानव की आवश्यकताएँ आती है, लक्ष्यों की पूर्ति काम/मूल्य के अन्तर्गत आती है। मूल्य व्यक्ति के जीवन के वे अंतिम लक्ष्य होते हैं जिनका चयन एक सतत् प्रक्रिया द्वारा होता है। एक व्यक्ति के लक्ष्य आकांक्षा, विश्वास, रूचि, अभिरूचि, चिन्तन आदि मूल्यों के सूचक ही होते हैं जिनके विकास और क्रियात्मक व्यवहार पर मूल्य निर्भर रहते हैं। मूल्य एक सामान्य एवं अमूर्त गुण है जो किसी व्यक्तित्व में निहित रहता है और उसके महत्व की ओर संकेत करती हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्ति या वस्तु का वह गुण जिसके कारण उसका महत्व सम्मान था उपयोग अधिक बढ़ जाता है, वह मूल्य कहलाता है।

2. मूल्य की व्याख्या

मूल्य शब्द अंग्रेजी के **Value** शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जो लैटिन भाषा के **Value** शब्द से बना है जिसका अभिप्राय किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता से है। भाषा की दृष्टिकोण से मूल्य मानव के गुणों को ही व्यक्त करता है। 'मूल्य' शब्द को सामान्यतः इस रुप में परिभाषित किया जा सकता है - "वह जो इच्छित है, हमारी इच्छाओं की पुष्टि का प्रयास करते है, ज्ञान इस प्रयास का मार्ग प्रशस्त करता है और ज्ञान के आधार पर चेतनावस्था में लक्षण ही की गई इच्छाओं की तुष्टि या प्राप्त किए गए लक्ष्य है। मूल्य हैं।"मूल्य मनुष्य के जीवन तथा समाज के प्रत्येक आयाम से संबंधित होते है। मनुष्य की ईच्छाओं और आकांक्षाओं को नियंत्रित करने का श्रेष्ठ साधन मूल्य ही है। मूल्य ही व्यक्ति के जीवन केा आदर्श का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मूल्य व्यक्ति समूह को भौतिक एवं सामाजिक रुप से समायोजित करने का साधन (माध्यम) होते हैं। जिसके माध्यम से मनुष्य अपनी व सामाजिक प्रगति की अभिव्यक्ति कर पाता है। मूल्य व ज्ञान परस्पर एक दूसरे पर आधारित हैं तथा इनके मध्य अन्र्तसंबंध जीवन के सभी पक्षों पर लिये जाने वाले निर्णयों के लिए महत्वपूर्ण मार्ग प्रस्तुत करते हैं।

3. मूल्यों की प्रकृति

मूल्यों की भी अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है, मूल्यों की प्रकृति को हम साधाणरतः निम्न बिन्दुओं में विभक्त कर स्पष्ट कर सकते है-

1- यह कमोबेष "अस्थाई" होते हैं। इन्हें स्थाई नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा होता तो प्रगति अथवा परिवर्तन का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता लेकिन इन्हें पूर्ण रुपेण

www.ignited.in

अस्थाई भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यदि ऐसा होता तो मानव जीव एवं समाज "सातत्य शून्य" रह जाता।

2- मूल्य विश्वास हैं। वह ऐसे विश्वास हैं जिन पर किसी कार्य विशेष की वांछनीयता अथवा "अवांछनीयता" का निर्णय आधारित होता है।

3- मूल्य स्वंय "प्राथमिकताएँ" भी होते है और "प्राथमिकता -निरुपक" भी हैं। कतिपय मूल्य स्वयं "साध्य" है। जबकि अन्य अनेक मूल्य उन साध्यों की संप्राप्ति के साधन या उपकरण मात्र हैं इसी प्रकृति के कारण मूल्य स्पर्धात्मक पद -सोपान उच्चतर से निम्नतर क्रम में भी अवस्थित हेाते हैं।

4- मूल्य आचारण की प्रवृतियों या दिशाओं के निर्धारिक और अस्तित्व की निर्धारिक स्थितियॉ भी है। इसी कारण मूल्यों का वर्गीकरण "अन्त वैयक्तिक एवं अन्त्रतवैयक्तिक" आधारों पर हो सकता है। कतिमय मूल्य "विशिष्ट परक" होते हैं।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि मूल्य हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण घटक है तथा पूरी शिक्षा की आधारशिला वास्तव में मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया है।

"सभी प्रकार के विचारशील लोग मूल्यों के तेजी से हो रहे ह्रास तथा उसके परिणाम स्वरूप सार्वजनिक जीवन में व्याप्त प्रदूषण से बहुत विक्षुब्ध है। वास्तव में मूल्यों की यह संकटग्रस्त स्थिति जिस प्रकार जीवन के अन्य क्षेत्रों मे व्याप्त है उसी प्रकार स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्विद्यालयों में छात्रों और अध्यापकों में व्याप्त है। इसे एक बहुत खतरनाक विकास के रुप मे माना जाता है। अतः यह आग्रह किया जाता है कि शिक्षा की प्रक्रिया का पुनः अभिविन्यास किया जाए तथा युवकों को इस बात को महसूस कराया जाए कि इस तरह न तो शोषण, असुरक्षा तथा हिंसा को रोका जा सकता है और न ही किसी संगठित समाज को कुछ सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक मानदण्ड़ों को स्वीकार किए और पालन किए बिना रखा जा सकता हैं। पिछले अनुभव से यह सीखने हुए, यह आशा की जाती है कि सुसंगत तथा व्यवहार्य मूल्य-प्रणाली को ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से लागू किया जाए जो जीवन के प्रति तर्कसंगत, वैज्ञानिक और नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित हो। सत्य एवं अहिंसा अत्यन्त महत्वपूर्ण जीवन मूल्य हैं। हमारे वेदों के ऋषि, पुराणों के प्रवक्ता, उपनिषादों को आचार्य, महावीर, बुद्ध आदि सभी के जीवनादर्श रहे। आधुनिक युग के विशेषतः स्वाधीनता-संघर्ष के दिनों में 'सत्य' एवं 'अहिंसा' ये जीवनमूल्य राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के साथ ही विशेष रूप से क्यों जुड़े। ये सनातन धर्म रूपी जीवन-मूल्य नये नहीं थे। गाँधीजी ने 'बहुजनहित' एवं 'सर्वजनहित' में इन्हें अंगीकृत एवं आत्मसात् किया। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में इन मूल्यों का सफल प्रयोग किया। भारतीय राजनीति में सत्य और अहिंसा का सफल प्रयोग गाँधीजी की विशिष्ट देन थी। इन मूल्यों को उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अपनाया और आत्मसात् किया। ये सभी उनके आदर्श कहलाए।

व्यापक दृष्टिकोण से हमारे शास्त्रों में विभिन्न प्रकार के धर्मप्रेरक कर्तव्य को धर्म भी कहा गया है। इसे दो भागों में बाँट सकते हैं- विशेष धर्म एवं सामान्य धर्म। विशेष धर्म के अन्तर्गत, कुलधर्म, देशधर्म, जातिधर्म, वर्णधर्म, पतिधर्म, पुत्रधर्म, पत्नीधर्म, गुरुधर्म आदि अनेक प्रकार के धर्मो का समावेश होता है। इन धर्मों का पालन देश-काल-पात्र की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न स्थानों तथा समयों में भिन्न हो सकता है। अतः हम इन्हें युग-धर्म की संज्ञा दे सकते हैं। इनमें अनेक नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों का समावेश होता है। राष्ट्रीय मूल्यों के समन्वय को हम राष्ट्रधर्म की संज्ञा दे सकते है। जैसे 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' (जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है) ऐसा मानकर देश की रक्षा करना, उसकी सम्पत्ति की रक्षा करना, अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार राष्ट्र के उत्थान में सहयोग देना इत्यादि राष्ट्रीय मूल्यों के समन्वय को हमारे प्राचीन साहित्य में राष्ट्रधर्म की संज्ञा दी गई है।

प्रायः मानसिक द्वन्द्व के क्षणों में मनुष्य मूल्य-निर्णय नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में मानव को अन्त्रतप्रज्ञा या अन्तश्चेतना ही उसकी सहायता करती है। इस अन्तरचेतना को सरल शब्दों में 'अन्दर की आवाज' भी कहा जाता है। इस अन्तश्चेतना को हम विविध उपायों द्वारा पुष्ट कर सकते हैं। इनमें से ही एक उपाय है मौन बैठक। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मौन धारण मन के लिए आदर्श व्यायाम है। महात्मा गाँधी, विनोबा आदि महापुरुष आत्मचिन्तन हेतू मौन का सहारा लिया करते थे क्योंकि अन्दर की आवाज सुनने के लिए बाहर के शोर-गुल से ध्यान हटाना आवश्यक है। मौन या निस्तब्धता की गहराई में ईश्वर की आवाज सुनाई देती है। इसी से मनुष्य आन्तरिक प्रकाश प्राप्त करता है और स्वयं प्रकाशित हो जाता है। इस स्वयं प्रकाशित अवस्थ को ही बुद्ध 'आत्मदीप' की संज्ञा देते हैं। प्रज्ञावाद पर आधारित बुद्ध के मार्मिक उपदेशों में एक महत्वपूर्ण उपदेश 'आत्मदीपोभवः' है। अर्थात् अपने लिए स्वयं दीप बनो, अपनी अन्तश्चेतना को जगाओं, उससे काम लो तभी तुम्हें साधना के मार्ग में सफलता मिलेगी। यह उपदेश उन्होंने अपने अन्तिम समय में आनन्द सहित अपने अन्य शिष्यों को दिया था। लौकिक सन्दर्भ में भी स्वयं-प्रज्ञा होना जीवन की सफलता का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सोपान है।

कर्तव्यनिष्ठा कार्य संस्कृति से सम्बन्ध एक महत्वपूर्ण जीवन मूल्य है। यह कर्तव्यनिष्ठा भारतीय संस्कृपि की प्रधान वस्तु है। आलस्यहीन एवं प्रमादहीन कर्तव्य को ही मोक्ष का अन्यतम सोपान माना गया है। क्योंकि ऐसा कार्य का ही रुप होता है। ऐसे धर्माचेरण से अर्थ एवं काम की प्राप्ति सहज रुप में होने से मोक्ष नामक पुरुषार्थ अपने आप सिद्ध हो जाता है। आत्मा को स्वतन्त्र बना देना ही मोक्ष है। कर्तव्य का आचरण करते-करते मन, बुद्धि और शरीर पवित्र हो जाते है। इस प्रकार के पवित्र मन और बुद्धि में आत्मा का स्वतन्त्र सत्ता प्रतीत होने लगती है। वह आत्मा हमें कहीं बाहर से लेने नहीं जाना पड़ेगा, वह तो सबके पास है। परन्तु मन और बुद्धि अपवित्र होने से उसे ग्रहण नहीं कर पाती। जब कर्तव्याचरण द्वारा मन, बुद्धि पवित्र हो जाती है, तब आत्मा का दर्शन होना सुगम हो जाता है। इसी को मोक्ष कहते हैं। मूल्यों की प्रकृति के बारे में तीन मत प्रचलित हैः-

1- **आत्मनिष्ट मत-** इस मत के अनुसार मूल्य इच्छा, रूचि, पसन्द, मेहनत करने, संकल्प-शक्ति, कार्य तथा सन्तोष जैसे कारकों पर निर्भर होते है। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप व्यक्ति के निजी जीवन में मुल्य विकसित होते है तथा वे व्यक्ति के अनुभवों से अत्यधिक जुड़ें रहते हैं।

2- **वस्तुनिष्ठ मत-** इस मत के अनुसार मूल्य व्यक्ति से स्वतन्त्र होते है तथा वे व्यक्ति में निहित होते हैं उनमे वस्तुनिष्ठता होती है।

www.ignited.in

3- **आपेक्षिकीय मत-** इस मत के पोषक मूल्यों को मूल्य प्रदान करने वाले मानव तथा उसके वातावरण के मध्य एक सम्बन्ध मानते हैं। वे मूल्य को अंशतः भावना तथा अंशतः तर्क समझते है। मूल्य नियामक तथा संरचनात्मक नियमों के मिलन स्थल हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार सूर्य को किरण से दूर नहीं किया जा सकता। खुशबू को फूल से दूर नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार मूल्यों को मानव से अलग नहीं किया जा सकता है। मूल्य इच्छा, रूचि, पसंद, मेहनत करने, संकल्प शक्ति, कार्य तथा संतोष जैसे अनेक कारकों पर निर्भर करता है। निजी जीवन में ये सब कारक हैं जिनके परिणाम स्वरूप मूल्य विकसित होते हैं तथा अनुभवों से अत्यधिक जुड़े रहते हैं। मूल्य गहरे, ऊँचे जटिल विषय हैं और ऐसा ही उनका ज्ञान है।

4. मूल्यों के प्रकार

युग के परिवर्तन के साथ-साथ में भी परिवर्तन आता है। समय व काल की जरुरतों के अनुसार मूल्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता हैः-

सैद्धान्तिक मूल्य - इसके अन्तर्गत किसी भी क्रिया के सिद्धांतों के प्रति लगाव तथा सत्य की खोज के प्रति प्रेम को सम्मिलित करते हैं।

सामाजिक मूल्य - इसके अन्तर्गत समाज, सहायता, दया, प्रेम, सहानुभूति मानव जाति कि सेवा करने की भावना को सम्मिलित करते हैं।

धार्मिक मूल्य - इससे तात्पर्य ईश्वर में विश्वास, स्वर्ग, नर्क का भय, धर्म एवं गुरूओं में विश्वास ईश्वर की अराधना आदि धार्मिक भावनाओं से है।

आर्थिक मूल्य - समस्त समाज की उसकी कार्यप्रणाली आर्थिक मूल्यों पर आधारित है। आर्थिक मूल्य से तात्पर्य मुद्रा व धन एकत्र करने की प्रवृत्ति से है।

सौन्दर्यात्मक/कलात्मक मूल्य - ये वे मानदण्ड हैं जिससे हम सुंदरता का निर्णय करते हैं अर्थात् इसमें हम सुंदरता के प्रति प्रेम, चित्रकला, संगीत, नृत्य, कविता, भवन, निर्माण, कला एवं साहित्य के प्रति प्रेम आदि की भावनाओं को सम्मिलित करते हैं।

राजनैतिक मूल्य - इससे तात्पर्य पद, प्रतिष्ठता, प्रभुत्व एवं शक्ति में रूचि रखने की भावना से है।

समग्र मूल्य - ये मूल्य नैतिकता से सम्बन्धित होते हैं। जैसे- ईमानदारी, वफादारी, पवित्रता, दूसरों का सम्मान करना, सभी के साथ उचित व्यवहार करना। शास्त्रों के अनुसार मूल्य के निम्नलिखित पक्षों कों रेखांकित किया गया है -

5. धार्मिक पक्ष

लोकमान्य तिलक ने कहा है - काल की मर्यादा केवल वर्तमान काल के लिए ही नहीं होती ज्यों-ज्यों समय बदलता जाता है त्यों-त्यों व्यावहारिक धर्म में भी परिवर्तन होता जाता है। इसलिए जब प्राचीन समय की किसी बात की योग्यता या अयोग्यता का वर्णन करना हो तब उस समय के धर्म अधर्म सम्बन्धी विश्वास का भी अवश्य विचार करना पड़ता है। लोकमान्य का यह मत अभिन्नदयनीय है। हिन्दू धर्म एक ऐसा धर्म है जिसने अन्य धर्मो को बिना किसी हठधर्मिता न केवल देखा बल्कि उनके भटकावों और अपधार्मिक विचारों तक को स्वयं अपने आंचल में स्थान दिया। आज भी अगर हम हिन्दू संस्कृति के त्यौहारों के पीछे जो कहानियां है, अगर उन पर दृष्टिपात करें तो निश्चित रूप से पायेंगे ये सारी कहानियां धर्म सम्बन्धी शिक्षाओं से भरी हुई है।

6. वैज्ञानिक पक्ष

भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता यही है कि - इसमें धर्म, दर्शन और सांसारिक व्यवहार में स्वभाविक रूप में समन्वय को प्रतिष्ठित किया गयाहै। हिन्दू धर्म साधना की यह एक विशेषता ही कही जायेगी कि इसके सभी नैष्ठिक क्रियाकलाप जागतिक आचरण की दृष्टि से भी विज्ञान सम्मत है। नवरात्रों की संकल्पना का आधार भी पूर्ण वैज्ञानिक है।

7. सामाजिक पक्ष

भारतीय संस्कृति सामाजिक एवं प्रबुद्ध थी। उसके सदस्य अपने उत्तरदायित्व एवं कत्र्तव्य के प्रति पूर्ण सजक थे। हिन्दू संस्कृति को अपने विकास के क्रम में इसकी प्रतीति हो चुकी थी कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा दो के बीच सामन्जस्य द्वारा भविष्य का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। हिन्दू संस्कृति आर्य जीवन में सम्पादित उन सभी श्रेयात्मक कृतियों का प्रतिनिधित्व करती है, जो आर्य जाति की प्राणदायिनी बनकर उसे चिर जीवन प्रदान करने में समर्थ सिद्ध हुई है। हिन्दू संस्कृति प्राचीन आर्यो में सामाजिक आचरण में रूपायित हुई है तथा आज भी वह सामान्य भारतीय जन-जीवन में अंकित है। भारत के राष्ट्रीय जीवन में जो मर्यादाएं प्रतिष्टित हुई है, वे सभी आर्य संस्कृति की विशेषताएं है।

8. नैतिक पक्ष

मूल्यपरक शिक्षा वस्तुतः नैतिक शिक्षा है। इसमें अंतर केवल दृष्टि और दृष्टि के विस्तार का है। मनोवैज्ञानिक गेस्टाल्ट के अनुसार प्रारम्भ में हम किसी वस्तु को पूर्ण रूप से देखते है और फिर अंश की और प्रयाण करते हैं। हिन्दू संस्कृति में नैतिक शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व था। पहले लोगों में नैतिक गुण प्रचुरता में पाये जाते थे। अतः बड़ों की आज्ञा का पालन करना, लोभ नहीं करना, कृतज्ञता, आध्यात्मिकता, विनम्रता, सदाचारिता, नियमों का पालन करना, सत्य की हमेशा जीत आदि नैतिक गुणों के दर्शन हमें हिन्दू संस्कृति के त्यौहारों की कथाओं में पग-पग पर होते हैं। प्रत्येक कहानी हमें कोई न कोई शिक्षा अवश्य प्रदान करती है। हिन्दू संस्कृति प्रमुख त्यौहारों की कथाओं में शिक्षा का पक्ष अत्यन्त विस्तृत है किन्तु शोध परिसीमन करते हुए हमने केवल धार्मिक, वैज्ञानिक सामाजिक एवं नैतिक पक्ष को उभारा है।

9. व्यक्तित्व के निर्णायक पक्ष

मनुष्य के सवभाव में भली और बुरी दोनों ही प्रकार की प्रवृतियॉ हैं। शिक्षा, संस्कार और वातावरण जिन प्रवृतियॉ को आकर्षित,

आमंत्रित करते हैं, वे ही प्रवृतियॉ बढती और फलती -फूलती हैं। शिक्षा और संस्कार जैस स्वीभाविक निर्णायक तत्व भी वातावरण पर ही अवलंबित होते हैं और वातावरण भी वही प्रभावित करता है, जिसके कि निकट संपर्क में रहना पडता है, वातावरण यों एक स्थिति का नाम है। जहॉ जिस प्रवृति के लोग अधिक होंगे, वहॉ वैसा ही वातावरण उत्पन्न होगा। इन अर्थों से मनुष्य का स्वभाव इस बात पर निर्भर करता है कि वह कैसे व्यक्तियों का साथ करता है? दृढ़ संकल्पी और निष्ठावान व्यक्तियों की बात अलग है अन्यथा लोग अपने निकटवर्ती व्यक्तियों और परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही कोई क्रिया कलाप या गतिविधियॉ अपनाते हैं । जैसे लोगों के साथ ही रहना पडता है, जिनका निकट संपर्क मिलता है, उनके गुण ही सबल होकर व्यक्ति को अपने समान बना लेते है। मिसरी की डली में पडी हुई बॉस की फॉस भी मिसरी के ही भाव बिकती है। व्यक्ति निसर्गतः तो अपना कोई बना -बनाया व्यक्तित्व लेकर नहीं आता। बचपन में भी उसे जिस तरह के बच्चों की संगति मिलती है, वह वैसे ही हाव-भाव और रीति नीति अपनाता है। वही आदतें, आगे चलकर अपने अनुरुप स्वभाव के लोगों को खोज लेती हैं और वैसी प्रवृतियॉ अपनाती है।

परिस्थितवश अच्छे लोग भी जब बुरे वातावरण में फॅस जाते हैं तो व्यक्तित्व में अपेक्षित दृढता न होने के कारण अच्छे स्वभाव के लोग भी बुरी आदतें सीख लेते है। उदाहरण के लिए नशेबाजी को ही लें। नशे में न कोई जायका होता है और न ही उसकी कोई आवश्यकता, उपयोगिता रहती है। फिर लोग क्यो नशा करते हैं? सौ में से निन्यावे लोग अपने नशेबाज यार - दोस्तों के आग्रह पर बीडी सिगरेट का कष लेते है। फिर धीरे-धीरे यह आदत उनके स्वभाव में इस कदर रच-बस जाती है कि छोडे नही छुटती ।

नशे की तरह ही जुआ खेलना, गाली गलोच करता, निठल्ले बैठना, मुफ्तखोरी करना, समय बरबाद करना, फैशन में रहना आदि कितनी ऐसी दुश्प्रवत्तियॉ हैं, जिन्हें व्यक्ति अपनी मित्र मंडली में रहकर ही सीखता हैं। जिन व्यक्तियों के साथ हम मित्रता करते हैं, स्वाभाविक ही उनकी दुश्प्रवृत्तियॉ से भी मित्रता करने लगते है और न जाने कहॉ-कहॉ की गंदी आदतें सीख जाते हैं। यहॉ तक कि कोई आदमी व्यभिचारी या चरित्रहीन बनता है तो उसके इस पतन का शत प्रतिशत कारण उसकी संगति ही रहती है। अन्यथा आरंभिक जीवन में तो सभी सदाचारी रहते है। सामाजिकता, लोकलाज, अपमान का भय और प्रचलित मान्यताओं की पाबंदी हमारे समाज में कुछ है ही इस प्रकार की कि व्यक्ति का कुमार्गगामी होना कठिन है। कदम -कदम पर इस राह पर पग बढ़ाते हुए भय, संकोच और लज्जा उत्पन्न होती है। लेकिन कुसंग में, बुरे साथियों के साथ गंदी हॅसी-मजाक में रुचि लेने के साथ उत्पन्न होने वाला रस दिनोंदिन पतन के गर्त में धकेलता जाता है।

इसके विपरीत अच्छे वातावरण में रहने और अच्छे लोगों की संगति का भी प्रभाव पडता है। न केवल मनुष्यों पर वरन पशु-पक्षियों पर भी इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित देखा जाता है। प्राचीनकाल में तो यह स्थिति हमारे लिए गौरवास्पद ही कही जाएगी कि ऋषि-मुनियों के आश्रम में सिंह और गाय एक ही स्थान पर स्वतंत्र और निर्भय विचरण करते थे। आजकल घरेलू पालतू पशु-पक्षियों पर भी वातावरण के प्रभाव को देखा जा सकता है। घर में पिंजड़े में पाले जाने वाले तोते वही बातें करना सीख जाते हैं, जो दिन -रात सुनते हैं। तोते गालियॉ भी बकते है और आने जाने वालों का अभिवादन -स्वागत भी करते हैं। इस आधार पर प्राचीनकाल के उन विवरणों को भी गलत नहीं बताया जा सकता। क्योंकि जिस स्थान पर प्रेम और अहिंसा की सद्भावनाओं का प्रबल-प्रचंड प्रभाव विद्यमान हो, वहॉ कोई भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। शेर, चीते सरकस में रिंग मास्टर के भय असंख्य गुना शक्तिशाली हैं, उसका प्रभाव क्यों नहीं होगा?

फूल टूट-टूटकर जिस मिट्टी में गिरते हैं, वह भी फूलों की सुगंध ग्रहण करने लगती है। चंदन वृक्ष के आस-पास विद्यमान पेड़-पौधे भी चंदन की सुगंध से सुवासित हो जाते है तो फिर क्या कारण है कि सद्गुणी और सज्जन व्यक्तियों के संपर्क में रहकर व्यक्ति वैसा न बनने लगे। सूर्यमुखी का फूल उधर मुड़कर खिला रहता है, जिस तरफ सूरज होता है। सुबह होते ही कमल की कली का मुँह खुल जाता है। उसी प्रकार संसर्ग के अनुरुप ही मनुष्य की अंतरात्मा में भी सत्प्रवृत्तियॉ और सद्गुण उभरकर आने लगते हैं।

प्रश्न उठता है कि अच्छी और बुरी प्रवृत्तियॉ दोनों ही विद्यमान हैं और अच्छाई अपने आप में शक्तिशाली है तो बुरे व्यक्तियों के संसर्ग से भय कैसा? यह ठीक है कि सत तत्व सामथ्यवान और शक्तिशाली है, पर उसकी सामाथ्य व्यक्ति के अपने आत्मबल के द्वारा ही विजयी या विजित होती है। शस्त्र अच्छे हों पास में, बंदूक के स्थान पर बढ़िया राइफल हो, चलाना भी आता हो, पर वक्त पडने पर हाथ-पैर फूल जाएँ और साहस जवाब दे जाए तो अकेली बंदूक या राइफल क्या कर लेगी। हमारा स्वभाव लाख अच्छा हो, लेकिन इतना आत्मबल न हो कि बुरे व्यक्तियों से अप्रभावित रह सकें तो वही प्रवृत्तियॉ हम पर भी हावी हो जाती हैं। इसलिए संगति से होने वाले प्रभाव के महत्व को जानकर हमें चाहिए कि हम अपना संपर्क बुरी आदतों और बुरे स्वभाव के व्यक्तियों से न रखें।

अतः आवश्यक है कि अपने संगी-साथियों का चुनाव करते समय विश्लेषण करें और समझ- बूझकर ही मित्रों का चुनाव करें। कुसंगति से बचना और अच्छे लोगों के सानिध्य से लाभ उठाना ही सत्प्रवृत्तियों को विकसित करने का एकमात्र उपाय हैं तथा इसकी उपेक्षा तनिक भी नहीं करनी चाहिए। अपना संपर्क दुष्ट और दुराचारी लोगों के साथ बन गया है तो उसे छोडने में जरा भी प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए और सज्जनों से अपना संपर्क है तो उसे घनिष्ठ बनाने के लिए शक्तिभर प्रयत्न करने चाहिए।

10. मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता

वर्तमान युग औद्योगिक युग है। औद्योगिक युग में यंत्रो की प्रधानता है। भौतिकवादी संस्कृति औद्योगिक युग की ही देन है। वर्तमान में मानव भोज और यंत्र प्रमुख बन गय है। मानव का उपयोग यंत्र के पुर्जे के रूप में हो रहा है। भौतिकवाद के कारण मानव यंत्रो का दास बन गया है। आज के जीवन में भौतिक सुख-सुविधा प्रमुख है। ज्ञान-विज्ञान और कौशल की उसके पास कोई कमी नहीं। वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चारो तरफ मूल्यों का हास हो रहा है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को मूल्यों तथा समायोजन से सम्बन्धित शिक्षा दी जाए। आज समाज में चारों ओर नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिलती है। आज की भीड़ भरी दुनिया में भौतिकता की आंधी में साम्प्रदायिक संकीर्णता की बाढ में, प्रतिस्पर्धा की होड़ में, स्वार्थपरकता के तूफान में हमारे सभी नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा धार्मिक मूल्य बहते जा रहे है। इस हास के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में गिरावट देखने को मिलती है। आज समाज में सामान्य व्यक्ति की यह धारणा है कि मेहनतकश व ईमानदार व्यक्ति पिस रहे है और झूठ व फरेब का रोजगार करने वाले फल-फूल रहे है ईमानदार व्यक्ति को मूर्ख माना जाता है। इस धारणा से शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन-

www.ignited.in

हीनता, श्रम के प्रति अनास्था, स्वकर्तव्य के प्रति उदासीनता, अनुत्तदायित्व आदि को जन्म दिया है। अतः आज की विसंगतियों में समाज तथा उसके प्रत्येक सदस्य का यह दायित्व हो जाता है कि वह मूल्यों के विकास पर बल दें, क्योंकि मूल्य-विहनी राजनीतिक एवं शिक्षा विनाश की ओर ले जायेगी, न कि विकास की ओर। भारत अपनी कला, संस्कृति, दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता रहा है। परन्तु आज अनास्था तथा पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परा एवं मूल्य धूमिल से हो गए है।

आज सम्पूर्ण भारत में शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिसके अन्तर्गत बालक सत्य के आधार पर अहिंसा द्वारा प्रेमपूर्वक जीवनयापन करना सीखें । शिक्षा से ऐसा मनुष्य बनाना है जो स्वयं स्वेच्छा से शाश्वत मूल्यों के पालन का प्रयास करे, जिससे व्यक्ति, समाज सभी का कल्याण सम्भव हो । इसके लिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति की आत्मा जाग्रत करना आवश्यक है, जिसके लिए आध्यात्म की आवश्यकता है । भारतीय संविधान नैतिक मूल्यों की अमूल्य निधि है । भारतीय स ंविधान की प्रस्तावना में जो मूल्य बताए गये हैं उन्हें शिक्षा द्वारा छात्रों के जीवन में उतारा जा सकता है । वे मूल्य हैं प्रजातन्त्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, न्याय, सहिष्णुता, व्यक्ति की गरिमा, विचार, अभिव्यक्ति आदि । ईमानदारी उपकार, विनम्रता, अहंकार, निस्वार्थता, समभाव, मन, वचन, कर्म की एकता के गुण । इन्हीं मूल्यों को छात्रों को अपने जीवन में उतारना है बालक को मूल्यपरक शिक्षा देनी चाहिए ।

11. मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया

बालकों में आज निम्न प्रकार से मूल्य निर्धारण प्रक्रिया का निरूपण किया जा सकता है -

1. स्वतन्त्र चयन- जब व्यक्ति मूल्यों को स्वयं चुनता है तब वह उन्हें महत्वपूर्ण मानने के लिए अधिक प्रयत्नशील रहता है । वह शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों की अनुपस्थिति में भी मूल्य आधारित आचरण करता रहता है । अतः व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने वाले मूल्य व्यक्ति के स्वतन्त्र चयन के परिणामस्वरूप स्थापित होने चहिये।

2. विकल्पों में से चयन व्यक्ति मूल्य स्वयं चुनता है। यदि चुनने के लिए व्यक्ति के सम्मुख विकल्प न हों तो कुछ भी सार्थक चयन सम्भव नहीं है। मूल्य तब निर्मित होते हैं जब व्यक्ति के सामने एक से अधिक विकल्प होते हैं तथा वह उनमें से किसी को चुनने के लिए स्वतन्त्र होता है।

3. प्रत्येक विकल्प के परिणामों के बारे में विचारपूर्ण मनन के बाद चयन- अनेक बार हम क्षनिक आवेग में आकर या चिन्तन-मनन किये बिना मूल्य चुन लेते हैं । इस चयन को विवेकपूर्ण नहीं माना जा सकता । वही बात हमारे जीवन को सही ढंग से निर्देशन प्रदान कर सकती है जिसके महत्व के बारे में चिन्तन व विचार-विमर्श किया गया हो और तब जिसे चुना गया हो । अतः चयन से पूर्व व्यक्ति को प्रत्येक विकल्प के परिणामों को स्पष्ट रूप से समझने की कोशिश करनी चाहिए ।

1- महत्व देना तथा कद्र करना- जब हम किसी वस्तु, विचार आदि को महत्व देते हैं तब हमें प्रसन्नता होती है, सुखद भाव उत्पन्न होते हैं । हम उसे महत्वपूर्ण मानते हैं, उससे अत्यधिक लगाव महसूस करते हैं तथा उसका आदर व सम्मान करते हैं । मूल्य उन चयनों से उत्पन्न होते हैं जिन्हें करने में हमें कोई परिस्थितिजन्य विवशता महसूस नहीं होती तथा हमें खुशी होती है । हम मूल्यों की कद्र करते हैं तथा मूल्य आधारित व्यवहार करने में हमें खुशी होती है।

2- दृढ़तापूर्वक अपने चयन की पुष्टि कर सकते हैं । यदि हम किसी चयनित आदर्श को सभी के सामने कहने में शर्म अनुभव करते हैं तो हमारा चयन मूल्यों का घोतक नहीं हो सकता है ।

3- चयन की क्रियान्विति- मूल्य जीवन को प्रभावित करते है ं वे हमारे विभिन्न दैनिक व्यवहारों में मूल्य परिलक्षित होते हैं । हम प्रतिकूल परिस्थिति में भी स्वयं के द्वारा महत्वपूर्ण मानी गयी बातों के बारे में अध्ययन करते हैं तथा उन पर समय, धन व शक्ति खर्च करते हैं । हमें उन समूहों व संगठनों का सदस्य बनना अच्छा लगता है जिनमें हमारे मूल्य पोषित होते हैं।

4- पुनरावृति- मूल्यों में स्थायित्व होता है । इनसे एक जीवन प्रतिमान बनता है । जब मूल्य चयनित व निर्धारित हो जाते हैं, तब जीवन में अनेक विविध परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न समयों पर उनकी अभिव्यक्ति होती है।

12. निष्कर्ष

मूल्यपरक शिक्षा' की आज जितनी आवश्यक अनुभव की जा रही है उतनी पहले कभी नहीं थी, क्योंकि आज हम एक गहन संक्रान्तिकाल से गुजर रहे हैं। हमारे प्राचीन परम्परागत मूल्यों में कुछ तो पूर्णतः विघटित हो चुके हैं और कुछ बड़ी तीव्र गति से विघटित हो रहे हैं। किन्तु नये मूल्य अभी प्रतिष्ठित अथवा स्थापित नहीं हो पाये हैं। आज सदाचरण, सत्य, अहिंसा, पे्रम, शान्ति जैसे शाश्वत परम्परागत मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की महती आवश्यकता है। ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत उत्थान के लिए अपितु सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति एवं शान्ति के लिए भी परम आवश्यक हैं।

हमारी प्राचीन परम्परा एवं संस्कृति से परिपोषित एवं वैयक्तिक अस्मिता एवं विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से नियन्त्रित जीवन-मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा में शिक्षण संस्थाओं का अपना विशिष्ट योगदान रहा है। किन्तु आज विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारणों से अधिकांश संस्थाएं स्वयं को धर्मसंकट की स्थिति में पा रही हैं। शिक्षण-व्यवस्था हमारी सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है। अतः समाज में विविध मानवीय मूल्यों में लक्षित गिरावट का असर शिक्षण-व्यवस्था पर भी होना स्वाभाविक है। इस गिरावट के कौन से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, समवायी-असवायी आदि कारण हैं एवं वर्तमान परिस्थितियों में उपलब्ध संसाधनों की सहायता से उनमें क्या, कितना और कैसे सुधार लाया जा सकता है और तदर्थ शिक्षण-संस्थाओं में विविध स्तरों और पर कौन से आयोजन-परिवर्तन सम्भावित एवं व्यावहारिक होंगे, ऐसे ही कतिपय हेतु विस्तृत कार्यक्रम एवं अनेक उपयोगी सुझाव यथास्थान दिये गये हैं। छः परिशिष्टों में दैनदिन व्यावहारिक उपयोग की सामग्री भी दी गई है।

विविध मानव-मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा के विषय में उपलब्ध विचारों को हम स्थूलतः तीन दृष्टिकोणों के रूप में रखते हैं- पूर्ण निराशावादी, पूर्ण आशावादी एवं आशावादी। प्रथम दृष्टिकोण के पक्षधर सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाये बिना मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा असम्भव मानते हैं।

कुछ तो शासन-तन्त्र में ही पूर्ण-बदलाव इस हेतु आवश्यक समझते हैं। दूसरे दृष्टिकोण के समर्थक पूर्ण आशाादी एवं आदर्शवादी कोटि के अन्तर्गत आते हैं। उनके अनुसार किसी भी बुराई का अन्त बुराई से नहीं होता, बुराई के बाद अच्छाई आना नैसर्गिक है। तीसरे दृष्टिकोण के पक्षधर न तो पूर्ण निराशावादी हैं और न ही पूर्ण आशावादी, वे मात्र आशावादी हैं। उनका कथन है कि मूल्य पूर्णतः नष्ट नहीं हुए, उनका अस्तित्व है, भले ही वे धूमिल अथवा विघटित अवस्था में हों। अतः अभिभवक, शिक्षक, शिक्षार्थी, प्रशासक तथा समाज के विभिन्न घटकों के सामूहिक प्रयत्न से वर्तमान स्थिति बहुत कुछ सुधारी जा सकती है। कुछ ऐसा ही दृष्टिकोण हमारे नीति-निर्धारकों का है।

नई शिक्षा-नीति में मूल्यों के गिरते स्तर पर चिन्ता करते हुए 'मूल्यपरक शिक्षा' पर विशेष बल दिया गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, लोकतांत्रिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को मन में बैठाना और विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का शारीरिक, बौद्धिक और सौन्दर्यपरक विकास करना नई शिक्षा नीति के लक्ष्यों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज शिक्षा-व्यवस्था में गुणात्मक सुधार की माँग की आवश्यकता है। दार्शनिक दृष्टि से जीवन-मूल्यों के अनवरत शोध एवं परीक्षण का नाम ही शिक्षा हैं। अतः जीवन-मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता अपरिहार्य है। इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ की उपादेयता एवं प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है।" आज शिक्षा-व्यवस्था में गुणात्मक सुधार की माँग की आवश्यकता है। दार्शनिक दृष्टि से जीवन-मूल्यों के अनवरत शोध एवं परीक्षण का नाम ही शिक्षा हैं। अतः जीवन-मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता अपरिहार्य है। इस दृष्टि से प्रस्तुत आलेख की उपयोगिता, उपादेयता एवं प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है।"

सन्दर्भ

1 नेगी, सुरेन्द्रसिंह- "नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता, आदित्य पब्लिषर्स मध्यप्रदेश 2000

2 पाण्डे, गोविन्दचन्द्र - "मूल्य मीमांसा", राजस्थान हिन्दी जयपुर 1973

3 मिश्र, करूणाशंकर-मूल्य शिक्षण भारतीय समाज में शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 2005-06

4 लोढा , महावीरमल - नैतिक शिक्षा: विविध आयाम राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1986

5 शर्मा, राजेन्द्र -नैतिक मूल्य शिक्षा, गुरुजी बुक कम्पनी , जयपुर 1998

6 मेनारिया, शिवचरण-नैतिक शिक्षा, शिल्पी, प्रकाशन, जयपुर 1996

7 श्री शरण- "अभिनव नैतिक शिक्षा", आधुनिक प्रकाशन दिल्ली 1997

अनुरूपी लेखक

आरती शुक्ला*

शोधार्थी, श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

www.ignited.in